अध्याय—तृतीय
21वीं सदी के भारतीय समाज का स्वरूप एवं राष्ट्रीय ध्वेय
अध्याय—तृतीय
21वीं सदी के भारतीय समाज का स्वरूप एवं राष्ट्रीय ध्वेय

3.1 पृष्ठभूमि —

विज्ञान और तकनीक में आचरणजनक प्रगति से मनुष्य अधिक भौतिक सुख—सुविधाओं को जुटाने में सफल हुआ, लेकिन अपने जीवन को सन्तोषप्रद बनाने में उसे अपेक्षित नहीं मिली है। भौतिक दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न पश्चिमी देशों में हुए अनेक सर्वक्षणों से पता चला है कि तमाम सुख—सुविधाओं के बावजूद जीवन में अवसाद और तनाव बढ़ता जा रहा है। सामाजिक स्तर पर देखें तो हम विषमता, आपसी हिंसा और टकराव तथा छीना—छपटी की प्रवृत्ति को कम करने में असमर्थ रहे हैं। कई तरह की आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं के प्रयोग से गुजरने के बाद भी विषय स्तर पर ऐसी व्यवस्था नहीं बन सकी है, जो अभाव और हिंसा के मूल कारणों को दूर कर खुशहाली और सन्तोषप्रद जीवन की बुनियाद तैयार कर सके।

मनुष्य के जीवन का मूल औवित्त्य यह है कि वह अपना जीवन—यापन करने के साथ—साथ अन्य मनुष्यों और जीवन के विविध रूपों की भलाई के बारे में सोचें और इसके लिए योजनाबद्ध ढंग से कार्य करें, किन्तु मनुष्य का आचरण अपनी इस रूप के भूमिका के अनुकूल नहीं होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य तरह—तरह के ऐंतर्दिक सुखों में आसक्त रहने के कारण अपनी मूल भूमिका की राह से भटक जाता है। अधिक—से—अधिक
संख्या में मनुष्य अपनी इस मूल भूमिका को निमाने में समर्थ हो सके, यही सार्थक बदलाव की पहचान है। इस सार्थक बदलाव को आध्यात्मिक आधार मिलता हुआ आवश्यक है। उसके बिना जो भटकाव की सिद्धि होगी, उसमें सार्थक बदलाव के भाग को अपनाना हुआत कठिन है।

किसी भी समाज का उद्देश्य कुछ में नहीं होता। समाज का विकास उसके विधान का रूप से ही होता है। इतिहास की दृष्टि से भारत के अलग-अलग क्षेत्रों का विकास अलग-अलग परिस्थितियों के भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ है। फिर भी अपनी समुद्र सांस्कृतिक विकास तथा विद्वानों के कारण भारतीय सम्पत्तियां संसार के एक अद्वितीय जीवित सम्पत्ति है। भारत इतना समय खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर है तथा विश्व के औद्योगिक देशों में अग्रणी है। प्रकृति पर विजय पाने हेतु अन्तरिक्ष में जाने वाले देशों में छठा स्थान है। लेकिन विकासात्मक ऑक्सीजन के बावजूद इसकी अनेक समस्याएँ हैं, जिनमें बढ़ती हुई जनसंख्या, वेरोजगारी तथा अशिक्षा प्रमुख हैं।

समकालीन भारतीय समाज अन्तरिक्षों का पिटाया है, जिसके कुछ पहलू अत्यंत पंखियों हैं। निर्भरता के प्रति एक प्रति एक विशाल समुद्र में चक्रांति कर देने वाली सम्पन्नता के कुछ बीत हैं। यह अपनी आध्यात्मिकता का दम भरता है, परन्तु इसका अभिजन अधीन तथा शक्तिशाली वर्ग आठवौं ण पुर्ण उपयोग के ऐसे मापदंड स्थापित करता है, जो अत्यंत ही नैतिक लगते हैं। भारत का विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र कहा जाता है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र अपराध और राजनैतिक गठबन्धन के कारण अनेक विद्वानों से प्रस्ताव है। परिणाम तक तृष्णा से भारत में जनशक्ति का एक प्रभावशाली बड़ा वैज्ञानिक तथा तकनीकी समूह है, किन्तु प्रतिभा पलायन के कारण इसका बहुत बड़ा हिस्सा विकसित देशों को चला जाता है। जहाँ वेतन और कार्य,
दो—परिस्थितियों बेहतर हैं। इसका बड़ा हिस्सा जो पीछे यहाँ रह जाता है।

कार्य की प्रतिकूल दशाओं तथा रचनात्मकता के लिए पुरस्कार के अभाव के कारण कुछ समय रहता है। देश के समक्ष अत्यंत तक उन ताकतों को रोकने का कार्य शोष है, जो वातावरण को प्रभावित करती है तथा पर्यावरण को विकृत करती है। एक समय लोग लुभावनावाद जनता को उल्लोचीत करता था,

लेकिन अब उनका भी असर समाप्त हो गया है। संस्थावादियों का कहना है कि नये भारतीय समाज के महज ज्यूठे वादों की बनाया जा रहा आधारशिलाओं पर बनाया जा रहा है।

3.2 भारतीय समाज का वर्तमान परिदृश्य —

भारतीय समाज बहुत पुराना और अत्यधिक जटिल है। इस लम्बी अवधि में विविध प्रजातियों के लक्षणों वाले भाषा—परिवारों के अप्रवासियों की कई लहरें यहाँ आकर इसकी आबादी में घुल—मिल गयी और इस समाज की विविधता, समृद्धता और जीवनपर्यावरण में अपना—अपना योगदान किया।

भारतीय समाज अपनी महान संस्कृति के लिए सम्पूर्ण विश्व में जहाँ प्रतिष्ठित रहा है, वहीं हमारे समाज में सांस्कृतिक आदान—प्रदान अथवा पर संस्कृति ग्रहण की प्रक्रिया भी संदेह क्रियाशील रही है। भारतीय समाज के इतिहास में शायद ही कोई ऐसा समय खोजा जासके, जबकि विदेशी संस्कृतियों ने हमारे समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न न किया हो, भारतीय संस्कृति की दुरारता ने उन संस्कृतियों को भी अपने में आत्मसात करके अपने भौलिक रूप को स्थिर बनाये रखा।

भारत सिद्धान्त और वास्तविक रूप में एक बहुत समाज हैं। भारत को इसकी एकता और विभिन्नता द्वारा समझा उचित होगा। विदेशी आक्रमणों

मुगल और ब्रिटिश शासन के उपरान्त भी भारत में सांस्कृतियों, धर्मों, भाषाओं
का सम्मिश्रण और विभिन्न जातियों एवं समुदायों के लोगों के बीच एकता और समरूपता बनी रही। भारत एक अनूठा दृष्टिपट्टि है, जिसका समानान्तर स्वरूप अन्य महादीमों में दृष्टिगत नहीं होता है। विदेशी आक्रमण, संसार के अन्य महादीमों में दृष्टिगत नहीं होता है। विदेशी आक्रमण, संसार के अन्य भागों से आप्रवासन, विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और धर्मों के अस्तित्व के कारण भारतीय संस्कृति न केवल सहिष्णु ही है, बल्कि अपनी विशिष्टता और ऐतिहासिकता को संजोये हुए एक अनूठी निरंतर और जीवन्त संस्कृति भी है।

हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, सिख, जैन, ईसाई प्रमुख धर्म है। सैकड़ों लोक भाषाओं के अतिरिक्त पन्तहर राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। विभिन्नता न केवल प्रानुक्तीय संस्कार, धार्मिक और भाषात्मक विकसित के सन्दर्भ में ही पायी जाती है। विभिन्नता हमें जीवन प्रणालियों, भूमि व्यवसायों, व्यवसायों, सम्पत्ति इत्यादि रूप से उत्तिकृत विषयों और जन्म विवाह व मृत्यु सम्बन्धी प्रथाओं और आचरणों में ही पायी जाती है। अनेक विषयों और भागों के रूप में बन्द हुए भी स्थानों भारत एक संगठित राष्ट्र है। अपनी सामाजिक विशेषत के अनुरूप एकता की धारणा प्रत्येक ऐतिहासिक कृत्ष ही सामाजिक तथ्यों में दृष्टिगत है। भारत एक धर्म निरेश्य राज्य है। भारत का एक संविधान है, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों धर्म संस्कृतियों और भाषाओं के लोगों को आश्वासन प्रदान किया गया है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में किसी धर्म विशेष या जाति विशेष का वर्चस्व कभी नहीं रहा है। यहाँ इतने धर्म हैं तथा आस्था और कर्मकाण्ड की दृष्टि से इतने अलग-अलग दंग से पंथ तथा सम्राज्य भी यहाँ हैं कि जो विवर्तन में बाल देते हैं। इसके साथ ही अभिजात्य वर्ग, औद्योगिक और वैदिक अभिजन भी जोड़ देने से हम, देखते हैं कि यहाँ अस्तीत, वर्तमान और भविष्य तीनों साथ-साथ रह रहे हैं। इसी विकास के क्रम में भारतीय समाज
में एक मिली-जुली संस्कृति को विकसित किया है।

जब हम वर्तमान सामाजिक परिदृश्य की चर्चा कर रहे हैं तो आज की वर्तमान सामाजिक चुनौती की व्याख्या करना भी प्रासंगिक रहेगा।

सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने, स्वतंत्र रूप से अपने अधिकारों को मांग करने और व्यवहार के नियमों में किसी प्रकार का भी परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था, किन्तु आज स्थिति यह है कि स्त्रियों परिवार के दायरों से बाहर निकाल कर कार्यालय में अपनी सहभागिता दिखा रही है। पुरुषों से कहा मिलाकर हर क्षेत्र में आगे है। यहाँ तक कि प्रशासनिक पदों पर भी महिलाएं आसीन हैं। महिला पायलट, फिल्मसिटी, ट्रेन झाडवर हर जगह महिलाओं का वर्चस्व है।

पहले समुच्चय परिवार हुआ करते थे। उनका ढौंठा इस प्रकार का था कि स्त्रियों को स्वतंत्रता और सम्पत्ति अधिकार देकर इसे किसी प्रकार भी सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। इसके फलस्वरूप समुच्चय परिवारों में अनेक गाथाओं और तथाकथित धार्मिक आदर्शों के आधार पर स्त्रियों को यह विश्वास दिलाया कि पति के कोई कामी, पापी और दुराचारी होने पर भी उसको देवता के रूप में पूजा करना स्त्री का परम धर्म है। समुच्चय परिवारों में पुरुष शासकों को सम्भवतः भय था कि स्त्रियों में चेतना का विकास होने से उनका शासन समाप्त हो जायेगा।

किन्तु आज की स्थिति वह नहीं है। आज परिवार का ही विघटन इस प्रकार होता है कि पति-पत्नी के साथ उनके माता-पिता, पुत्र-पुत्री के रहने की बात भी नहीं सोची जाती। प्रशासनिक देशों में तो पति-पत्नी का एक परिवार के साथ रहना भी सम्भव नहीं हो पाता। कहने का तात्पर्य है कि बड़े-बड़े परिवार टूटकर अब न्यूक्लियर परिवार में ही परिवर्तित नहीं हुए हैं।
अपितु उनका रूप अब केवल एक व्यक्ति में सीमित रह गया है। पति-पत्नी
tथा बच्चे अलग-अलग रहते हैं, जिसका कारण द्वृत-परिवर्तनशीलता,
पारिवारिक —बच्चों की शिविरिता आदि है।

परिवार समाज के एक मौलिक सार्वभौमिक संस्था है। जब
परिवर्तन जीवन के सभी क्षेत्रों में हो रहा है तो परिवार उससे अपूर्ता कैसे रह
सकता है। समाज की एक इकाई के रूप में परिवार आज परिवर्तन के मध्य
है। पारिवारिक विघटन बिभिन्न प्रकार के परिवारों में से किसी परिवार की
क्रियाशीलता के रूप में माना जा सकता है। इस प्रकार पारिवारिक विघटन
में केवल पति-पत्नी के मध्य पनपने वाला तनाव ही नहीं आता है, बल्कि बच्चों
और माता-पिता के मध्य पनपने वाला तनाव भी आ जाता है। परिवार समाज
और व्यक्ति के बीच महत्वपूर्ण श्रृंखला है। समाज को आपसी करने का
एक सोपान है। परिवार में एक-दूसरे के प्रति स्नेह के बल्धन, स्वार्थों का दमन
और सुख के लिए भावना का विकास होता है और बड़े समाज की तैयारी
लिए परिवार का जीवन एक प्रशिक्षण केंद्र बन जाता है।

सामाजिक स्थिति का एक दूसरा पहलू जाति व्यवस्था का भी है।
पिछले 50 वर्षों से जातिवाद अपने ऊँचा रूप से सामने आयी है। युवाओं में भी
इसके परिणाम सामने आये हैं। मनुष्य स्वस्थ्य मानसिकता से संबंधित न
होकर जातिवाद के दबाव में आकर अपने मत का प्रयोग करता है, जो कि
किसी भी राष्ट्र या समाज को विशेष महत्व न देकर अपने जाति हितों को
सर्वोपरि मानता है और अपनी जाति के स्वार्थों की दृष्टि से सोचता है।

आजादी के बाद भारत ने प्रजातन्त्र को अपनाया स्वतन्त्र भारत के
संविधान के अनुसंधान 15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के
साथः धर्म, मूलवंश लिंग जन्म आदि के आधार पर कोई मेद-भाव नहीं
करेगा, किन्तु जातिवाद प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

जातिवाद के वसीमृत हो व्यक्ति सम्पूर्ण समाज एवं राज्य के हित में सोच ही नहीं पाता और अपनी जाति के व्यक्तियों को सब प्रकार की सुख सुविधाएँ एवं राजनीतिक शक्ति प्रदान करना चाहता है। परिणाम यह होता है कि चुनावों में जातिवाद के आधार पर बोट किये जाते हैं। कई लोग कहते हैं कि हम बोट और बेटी तो अपनी जाति वाले को ही देंगे। राजनीतिक दल भी उम्मीदवारों का चयन करते समय क्षेत्र विशेष की बहुसंख्यक जाति का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं। पंचायतों, म्यूनिसिपल कमेटियों, विधान सभा एवं संसद के चुनावों के अध्ययन उपर्युक्त बात की पुष्टि करते हैं। डॉ० एम.एन.श्रीनिवास ने मैसूर राज्य का उदाहरण देते हुए लिखा है कि वहाँ पंचायत के चुनावों से लेकर राज्य के मंत्रियों एवं सचिवों तक की नियुक्तियों में जातीय आधार अपनाया जाता है। जातिवाद का विष धीरे-धीरे राजनीतिक-आर्थिक एवं सामाजिक सभी वर्गों में फैल रहा है और आज जातीय निष्ठा में वृद्धि हुई एवं सामाजिक तथा राष्ट्रीय हितों की बलि दी गयी है।

जातिवाद का प्रश्न एक—दूसरे प्रसंग से भी सामने उभर कर आया है। संविधान में हरिजों और अनुसृचित जाति के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गयी थी। संविधान के अनुसे बदल 334 में संसद और विधान सभाओं में अनुसृचित जातियों और अनुसृचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था 30 वर्षों के लिए गयी थी। 1980 में उस्से पुनः जीवित कर दिया गया। अनुसे बदल 355 में इन जातियों के लिए विशेष सुविधा प्रदान की गयी है। अनुसे बदल 16 में यद्यपि सार्वजनिक नौकरियों में समानता की बात कही गयी है। फिर भी सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के लिए तथा अनुसृचित जाति और जनजातियों के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान करने की
व्यवस्था अनुच्छेद 15(4) में की गयी है। कहने का तात्पर्य यह है कि अनुसूचित जातियों पिछड़ी जातियों तथा कथित प्रगतिशील जातियों में दरस्तर गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ रहा है। 50—55 वर्षों पूर्व जब देश स्वतंत्रता के युद्ध में लगा हुआ था, तब जातिवाद के प्रश्न पर किसी को सोचने का अवसर ही नही मिलता था। इस सम्बन्ध में लोक नायक जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि, “आर्थिक आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर होना चाहिए न कि जाति के आधार पर।”

भारत विविध सामाजिक और सांस्कृति तत्त्वों का संश्लेषण कहा जाता है। यह आर्थिक और द्रविड संस्कृतियों का मिश्रण हो, इस संश्लेषण के फलस्वरूप गोत्र, परिवार, जाति और विधि व्यवस्था में एकता पायी जाती है।

प्राचीन काल में आज तक भारतीय समाज की निर्मतरता इस संश्लेषण के द्वारा बनी हुई है, किन्तु समय—समय पर राजनीतिक शक्तियों ने इसे प्रभावित किया है। किसी ने ठीक ही कहा है कि राजनीति, अर्थनीति को छोड़ अन्य सभी बातों पर शासन करती है।

3.3 भारतीय समाज का वर्तमान आर्थिक परिदृश्य —

प्राचीन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था काफी उन्नत दशा में थी। विश्व में भारत “सोने की चिड़िया” के नाम से विख्यात था। मध्यकाल में भी यूरोप तथा दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ भारत का व्यापार सदैव भारत के पक्ष में रहता था। 1600ई0 में ब्रिटिश इंडिया कम्पनी की स्थापनार हुई। ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए भारत से भारी मात्रा में कच्चे—माल भरे हुए जाते गए। ब्रिटिश सरकार ने अपने हितों को ध्यान में रखकर अन्यायपूर्ण तरीके से भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण तो किया है, उसके सभी क्षेत्रों में स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया को योजनाबद्ध तरीके से
अवरुद्ध भी कर दिया। ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण भारतीय कृषि की अवनति हुई, भारतीय हस्तशिल्प एवं कुटुटी उद्योग समाप्त हो गये तथा अभिकर्मियों की स्थिति भी दयाली हो गयी। ब्रिटिश काल में पड़ने वाले अकालों ने स्थिति को और भी भयावह बना दिया। अग्रेजों ने भारत में एक नयी तथा शोषणकारी जमींदारी व्यवस्था को जन्म दिया, जिसमें लगान बढ़ाने के लिए जमींदारों की नियुक्ति की जाती थी। ये जमींदार अन्यापूर्ण तरीकों से किसानों से अधिकाधिक लगान बढ़ाते थे। जहाँ तक ब्रिटिश भारत में आधुनिक उद्योगों का प्रसार है, ब्रिटिश उद्योग जब अपने उत्पादन मांग पूर्ण करने में अक्षम हुए तो शोषा बहुत ही विश्वस्युद्ध के समय औद्योगीकरण को कुछ प्रोत्साहन मिला।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त कराने का विशेष रूप से उल्लेख है। आर्थिक न्याय से यह आशय है कि प्रत्येक नागरिक की राष्ट्रीय समस्ति में से उसका अपना जीवन भाग अवश्य मिलना चाहिए और वितरण न्याय का भी यही अर्थ है। इसके अतिरिक्त राज्य ने अनेक संवैधानिक प्रावधान भी किये हैं। जिससे सभी लोगों का आर्थिक विकास हो सके।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत की आर्थिक नीति का उद्देश्य जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाना रहा है। इसकी प्रगति के लिए औद्योगीकरण में तेजी से वृद्धि लाकर अर्थतन्त्र की संरचना में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया। इसके नीति निर्माताओं ने एक सुनियमित आर्थिक विकास का मार्ग चुना, किन्तु इसका कुछ परिणाम उत्साहवर्धक न निकला।

आर्थिक वृद्धि से अपना देश विकासशील देशों में समया जाता है। अभी विकसित देशों में इसकी गणना नहीं है। भारत में प्रति व्यक्ति आय का
स्तर बहुत नीचा है। जहाँ अन्य देशों में प्रति व्यक्ति आय 430 डॉलर थी, जबकि 1998 में विश्व में सवारिक प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय वाला देश स्विट्जरलैंड था, जिसकी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय 480 डॉलर थी। 1998 में भारत की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में लगभग 1/75 थी। भारत में धन एवं आय के वितरण में भारी असमानता पायी जाती है। राष्ट्रीय न्यायाधि सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या के 39 प्रतिशत के पास ग्रामीण परिसम्पत्ति परिसम्पत्ति का केवल 5 प्रतिशत पाया जाता है। शहरों में आर्थिक असमानता गाँवों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति से सम्बन्धित आंकड़े इस प्रकार हैं—

<table>
<thead>
<tr>
<th>राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय से सम्बन्धित आंकड़े</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>माप</td>
</tr>
<tr>
<td>साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद — स्थान मूल्यों पर</td>
</tr>
<tr>
<td>चालू मूल्यों पर</td>
</tr>
<tr>
<td>साधन लागत पर सकल सार्वजनिक उत्पाद — स्थान मूल्यों पर</td>
</tr>
<tr>
<td>चालू मूल्यों पर</td>
</tr>
<tr>
<td>प्रति व्यक्ति आय रुपयों में — स्थान मूल्यों पर</td>
</tr>
<tr>
<td>चालू मूल्यों पर</td>
</tr>
<tr>
<td>सकल घरेलू बचत की दर</td>
</tr>
</tbody>
</table>
भारत में अभी भी करोड़ें व्यक्ति निर्धारित रेखा के नीचे जीवननयन करते हैं। योजना आयोग के अनुसार तीव्र जनसंख्या वृद्धि इसका कारण बन गयी है। जनसंख्या की इतनी ऊँची वृद्धि दर के कारण प्रति वर्ष भारत की जनसंख्या में लगभग 1.7 करोड़ लोगों की वृद्धि हो जाती है। वर्तमान में भारत की जनसंख्या 100 करोड़ के ओर का कारण है, जो विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत है, जबकि भारत के पास विश्व के कुल भूमि क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत क्षेत्र ही है।

पहले लोगों का विचार था कि आर्थिक विकास से गरीबी दूर हो जाती है, किन्तु आर्थिक विकास के साथ--साथ गरीबी दूर नहीं हो सकी है। इसलिए लोगों को अर्थव्यवस्था पर फिर से चिंतन करना पड़ा। वास्तविकता यह है कि आर्थिक स्थिति का लाभ कुछ उच्च वर्गों के लोगों को ही मिल पाता है और अधिकांश लोग उन लाभों से बेहतर रह जाते हैं। इसलिए प्रति व्यक्ति औसत आय से गरीबी का सही आमास नहीं हो पाता है। इसलिए प्रति व्यक्ति औसत आय आर्थिक व्यवस्था के चार बिन्दु विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

1— पहला तो यह है कि देश का आर्थिक विकास केंद्रीय नियोजन पर ही सम्मान है। केंद्रीय नियोजन के सम्बन्ध में भारतीय राष्ट्रपति श्री नीलम सर्जेंट रेड्डी ने 26 जनवरी 1982 को निम्नलिखित कथन दिया—
“नियोजन—क्रिया भारत के सामाजिक--आर्थिक दर्शन का अनिवार्य अंग है।” इसके साथ ही उन्होंने यह भी संकेत दिया कि, आज की सभी बड़ी चुनौती आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय में समन्वय स्थापित करने की है। अपने राष्ट्र की भूति किसी विकासशील समाज के लिए आज वास्तविक चुनौती यह है कि, किस प्रकार आर्थिक विकास को सामाजिक न्याय के साथ जोड़ा जाय। केंद्रीय नियोजन
में सामाजिक नियोजन की उपेक्षा हुई है।

2- दूसरा आज भारी उद्योगों का महत्व बढ़ गया है। यह ठीक है, किसी देश के आर्थिक विकास में भारी उद्योगों का अपना महत्व है किन्तु यदि भारी उद्योगों के विकास से लघु उद्योग समाप्त हो जाय या खतरे में पड़ जाय, तो इससे समस्याओं का समाधान नहीं होता, बल्कि समस्याएँ और जटिल हो जाती है।

3- तीसरा पब्लिक सेक्टर को महत्व दिया जा रहा है। पब्लिक सेक्टर उद्योग के कार्यों की जो समीक्षा विगत कुछ वर्षों में हुई है। उससे यह निष्ठा निकलता है कि ये उद्योग अधिकांशतः घाटे पर चल रहे हैं। इनमें प्राइवेट उद्योगों की सक्रियता, प्रेरणा और रूढ़ि का अभाव रहता है। सरकारी आवेदकों के नियन्त्रण में उद्योग चलते हैं, जो आज के युग की तेजी से बदलती हुई मांगों को पूरा नहीं कर पाते।

3- चौथा है, प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण। बैंकों का राष्ट्रीयकरण पूँजी पर सरकारी नियन्त्रण रखने की प्रक्रिया का एक अंग है, इससे जनता को अनेक आरंभिक हो जाती हैं और लोग बहुत-सी पूँजी बैंकों में न जमा करके दूसरे रास्तों से प्रयाग में लाते हैं और इस प्रकार एक समानान्तर, आर्थिक व्यवस्था काम हो जाती है।

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर अपने भाषण में कई विकास योजनाओं की घोषणा भी की। इनमें कुछ नई योजनाएँ हैं, तो कुछ पहले से चल रहे कार्यक्रमों का विस्तार। सर्व शिक्षा अभियान के तहत इस साल बाई लाख शिक्षकों की नियुक्ति और किसानों के लिए किसान आयोग गठित करने की बात भी उन्होंने कही और कहा कि इसके अलावा देश भर में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संगठन की
तरह के छ: नये अस्पताल खोले जायेंगे। उन्होंने नदियों को जोड़ने की परियोजना का जिक्र करते हुए कहा कि राज्यों के सहयोग से इस साल के अंत तक इस पर काम शुरू हो जायेगा। उन्होंने किसानों की तरह महंगारों, दर्सकारों और बुनकरों के लिए भी क्रेडिट कार्ड और आँशिक बीमा योजना शुरू करने की घोषणा की।

सन् 2010 तक किसानों की औसत आय बढ़ाकर दो गुना करने की बात भी कही, जिससे किसानों को बल मिलेगा और करोड़ों रुपये के खर्चों की बर्बादी रोकने की मदद मिलेगी। उन्होंने हरितक्रांति और स्वेत क्रांति की खाद्य शृंखला क्रांति लाने की अपील की।

प्रधानमंत्री ने देश में संचार क्रांति का जिक्र करते हुए कहा कि देश में मोबाइल सेवा तेजी से बढ़ रही है। मोबाइल धारकों की संख्या ढेर करोड़ हो गयी है। अगले साल इसमें और ढेर करोड़ की बढ़ोतरी भी होगी। उन्होंने जम्मू-काश्मीर में भी मोबाइल सेवा शुरू करने की घोषणा करते हुए बताया कि राज्य में मोबाइल सेवा शुरू करने पर लम्बे समय से विचार हो रहा था। भारत संचार निगम लिमिटेड यह सेवा देने के लिए तैयार है, इसके लिए संसाधन और जरूरी उपकरण लगाये जा चुके हैं।

देश की आर्थिक स्थिति पर उन्होंने कहा कि कर्ज लेने वाला देश अब कर्ज देने लगा है। पहले हमारे देश में विदेशी मुद्रा को कमी रहती थी, लेकिन अब तक अरब डॉलर का विदेशी मुद्रा भंडार है।

लघु उद्योग क्षेत्र का नाम भले लघु है, मगर इस क्षेत्र का आकार काफी बड़ा है। इस क्षेत्र में 2 करोड़ लोगों को रोजगार हासिल है। सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 6.29 कीसदी है देश के कुल निर्यात का 34
फीसदी हिस्सा छोटे उद्योगों का है। देश की 95 फीसदी औद्योगिक इकाइयाँ लघु उद्योगों की श्रेणी में आती है। पिछले चार वर्षों में ही इस क्षेत्र में 28 लाख नई नौकरियाँ का सृजन हुआ। अक्टूबर 1999 में उद्योग मंत्रालय का विवाह करके लघु उद्योग मंत्रालय बनाया गया, इस मंत्रालय को लघु उद्योग के क्षेत्र में विकास की रफ्तार तेज़ करने और सुविधाएं जुटाने की जिम्मेदारी दी गयी।

यूनाइटेड नेशंस इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट ऑर्गनाइजेशन (यूनिड) के साथ मिलकर विभिन्न क्षेत्रों के लिए विशेष कार्यक्रम भी संचालित किये जा रहे हैं, ताकि लघु उद्योग जगत के इन खंडों में प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ावा मिल सके।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ अवधि के बावजूद इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भारत ने कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है। विकास का एक समाजवादी मार्ग अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया है।

3.4 भारतीय समाज का वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य —

भारत एक पूर्ण स्वतंत्र गणराज्य है। यह विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। इसकी सफलता के बारे में जो भी शांकाएं थीं, उनका तर्क था कि भारत सत्तावादी, पितृवादी शासन का आदि तथा यहाँ पर लोकतंत्र की कोई परम्परा नहीं है। इसके नेताओं को राज्य के जटिल तन्त्र को चलाने का कोई अनुभव नहीं है। धार्मिक एवं जातिगत विभिन्नताओं के कारण इसका राष्ट्रीय जुड़वां कमजोर है तथा इसके मतदाता अज्ञान और अनेकांक में बूढ़े हैं। यह एक बड़ी उपलब्धि है कि भारत में लोकतान्त्रिक प्रयोग जीवित रहा है।

यद्यपि उसे आन्तरिक तथा वाह्य दोनों प्रकार के अनेक संगठों का सामना
करना पड़ता है, आपसी सहयोग भी नहीं है।

प्रारंभ में देश को अनेक प्रकार की दिक्कतें का सामना करना पड़ा, जिससे संघर्ष करते हुए अपनी अहम् भूमिका को प्रस्तुत किया। उसने एक ऐसे शासन का अंत किया, जिसकी जड़ें अत्यधिक गहरी थी, जिसमें उनके जन-धन की अत्यधिक हानि भी हुई, लेकिन ऐसे में देश का नेतृत्व करने के लिए कुछ चुनिन्दा लोगों का सहयोग मिला, जिससे देश आज एक विकसित देशों की श्रेणी में अपना नाम लिखा सका। यह सच है कि कार्यभार ग्रहण करते समय इसके नेताओं को सरकार चलाने का अनुभव नहीं था, लेकिन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में नेहरू, अमबेडकर, गांधी आदि की भूमिका अग्रणी थी। सरदार पटेल का राजनेतृत्व था, जिसमें रियासतों का विलयन भारतीय संघ में समभाव हुआ।

देश के विभिन्न भागों की राजनৈतিক व्यवस्था को एक प्रभुसता सम्पन्न राज्य में एककृत कर दिया गया है। देश की शक्ति के लिए एक प्रभावशाली संरचना का निर्माण किया गया। सरकार के वैसे तथा वैसे विश्वसनीय समूहों के बीच साक्षात्कारी बनावट गयी। एक बड़ी सीमा तक प्रेस की स्वतंत्रता संरक्षित थी। राजनैतिक भाषण भी बड़ी सीमा तक सुरक्षित है। विदेश नीति पंचशील और गुट निरपेक्षता के आधार पर मनाये गयी है। इस प्रकार विश्व शास्त्री के पक्ष में भारत ने अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। इस पूरे क्षेत्र की शास्त्री एक बड़ी सीमा तक भारत में लोकतात्त्विक सरकार के परीक्षण की सफलता पर निर्भर है किन्तु इस राजनैतिक परिदृश्य का एक अनंतकारण राष्ट्रव्यापी पक्ष भी है। भारत में लोकतंत्र प्रत्यक्ष अधिक और यथार्थ कम है और यह बात राजनैतिक स्तर पर अधिकांशतः स्पष्ट होती है।
आज भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में जो भी विसंगतियाँ दिखायी देती हैं, उनको भारतीय जनता के मनोवृत्तियों में तार्किकता एवं जागरूकता को विकसित करके गिराया जा सकता है, जिसका सशक्त माध्यम शिक्षा है। पर क्या यह राजनीतिक बन्धनों से मुक्त है? स्पष्ट उत्तर है, शिक्षा, राजनीति से मुक्त नहीं है। जैसी हमारी सरकारी होगी, शिक्षा भी वैसी ही होगी। शिक्षा की राजनीति किस प्रकार प्रभावित कर रही है, इसका विश्लेषण किया जाना भी आवश्यक है। राज्यों को बहुत से अधिकार दिये गये हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा राज्य का विषय है, फरवरी 1976 में उसे सहरतन्त्र सूची में ला दिया गया, जिसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा के ऊपर केंद्रीय नियंत्रण बढ़ गया। वैसे तो शिक्षा में केंद्रीय नियंत्रण की प्रक्रिया और पहले से ही प्रारंभ हो गयी थी। एन.एस.ई.आर.टी. की स्थापना, उ.जी.सी. का विश्वविद्यालयों पर नियंत्रण उसी केंद्रीकरण की प्रक्रिया के अंग थे। सारे देश के लिए एक स्वरूप पाठ्यक्रम बनाना और सचालन उसी केंद्रीकरण प्रक्रिया का एक स्वरूप है।

अंग्रेजों के शासनकाल में भी शिक्षा विकसित थी और उसकी व्यवस्था करना राज्यों के अधिकार में था। यही नहीं, राज्यों ने भी प्राइमरी या प्राथमिक शिक्षा जिला परिषदों को सौप दी थी, किंतु पिछले 50 वर्षों में एक और शिक्षा के केंद्रीकरण करने की मांग ने जोर पकड़ा, तो दूसरी और सरकारीकरण तथा राष्ट्रीयकरण की मांग सामने आयी। इसके दो कारण थे—एक तो प्राइवेट संस्थाओं ने शिक्षकों का श्रोण छुट्टे देते थे और शिक्षकों ने यह सोचा कि सरकार का नियंत्रण रहने से वेतन सम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था सुधीर किया जा सकता। जिसका परिणाम यह है कि शिक्षा संस्थाओं पर पाठ्यक्रम पर पार, पाठ्य—पुस्तकों पर तथा शिक्षकों पर प्राइमरी तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में उ.जी.सी. के माध्यम से और वेतन नियंत्रण की व्यवस्था में अपत्यक्ष किंतु प्रमाणी नियंत्रण है।
मुख्यमंत्री के विशेष पैकेज में बीजेपी के रोजगार के अवसर प्रदान कराये हैं। वोडा दारों को विशेष भी.टी.सी. का प्रशिक्षण दिलवाकर, शिक्षामित्र के जरिये तथा रिक्त पड़ी नियुक्तियों पर लोगों का चयन करके बीजेपी को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है।

जो बात लोकतंत्र के बीर में लागू है, वही बात समाजवादी तथा धर्म निरपेक्षता पर भी लागू होती है। ये शब्द अब तक बनकर रह गया है, क्योंकि समाजवाद के नाम का उपयोग सभी प्रकार के कार्य-क़लापों को ढकने के लिए एक आवरण के रूप में किया जाना लगा है। यहाँ तक कि कभी-कभी मिली-जुली अर्थव्यवस्था के संचालन को भी देश में समाजवाद स्थापित करने की दिशा में एक निश्चित कदम माना जाता है, जबकि समाजवाद का मूल सिद्धान्त यह है कि उत्पादन और वितरण के सभी साधनों पर राज्य का स्वामित्व हो और इस क्षेत्र में निजी सम्पत्ति के प्रवेश की अनुमति न दी जाय। उससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि समाजवाद सभी प्रकार के शोषण का निषेध करता है, पर हम अपने चारों ओर देखते हैं कि भूमिहीन खेतिहर मजदूर और औद्योगिक कामगारों का अमानवीय ढंग से शोषण हो रहा है। स्वतंत्रता के बाद धनी और धनी होते गये हैं तथा गरीब और गरीब। आज देश की आधी जनता के लिए दो जुन की रोटी जुड़ताना भी कठिन कार्य हो गया है। इसका एक और भी कारण है कि पूरा शासनतंत्र भ्रष्ट हो चुका है। चुनाव के माध्यम से बाहुबली शासन सत्ता में आकर अपने घरों को भर रहे हैं। गरीब जनता उनकी शिकार हो रही है। विकास के नाम पर करोड़ों रुपये आवंटित किये जाते हैं, लेकिन विकास कहीं दिखाई नहीं देता। चाहे वो चुनाव विधान सभा का हो या विधान परिषद का या विश्वविद्यालय के चुनाव में भी छात्र बढ़े-बढ़े बाहुबली नेता का दरवाजा खोलने हैं और वहाँ से धन, शस्त्र को लेकर अंधेरा ढंग से चुनाव को सम्पन्न करते हैं।
आज राजनीति जनहित और लोकसेवा के बजाय लोकशोषण पर केन्द्रित है। पद—लोकपति का बोलबाता है और कोई कार्य बिना उत्कोच के नहीं हो सकता। इस राजनीति का यदि कोई विकल्प नहीं सोचा जाता है तो नागरिक जीवन तथा शिक्षा दोनों ही असुरक्षित हो जायेंगी। निःसन्देह ऐसी प्रभृति राजनीतिक व्यवस्था को दूर करने का सशक्त माध्यम शिक्षा ही हो सकती है, परंतु आज की हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर इन दोनों को दूर करने अक्षम रही है।

3.5 भारतीय समाज के सांस्कृतिक मूल्य एवं परम्परायें —

मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संस्कृति का विकास किया। यह संस्कृति मानव के लिए साधन एवं साध्य दोनों ही बन गयी। एक ओर मानव ने अपनी विभिन्न शारीरिक क्षमताओं के द्वारा संस्कृति को जन्म दिया तो दूसरी ओर संस्कृति ने मानव के उत्थान में योग दिया, उसे पशु जगत्त से मिलन किया और सम्भव तथा सुसंस्कृत प्राप्ति बनाया।

मानव की यह संस्कृति कभी स्थिर नहीं रहती, इसमें परिवर्तन सुधार, विकास संवर्धन, विघटन तथा पतन की प्रक्रियाएँ घटित होती रहती है। आदूनिक संस्कृति मानव के हजारों वर्षों के सतत प्रयासों का फल है और यह परिवर्तन के अनेक क्रांतिकारी दौरों से गुजर चुकी है। आज भी संस्कृति में विभिन्न अंग जैसे कला, धर्म दर्शन, प्रौद्योगिकी—नैतिकता, शिक्षा अर्थव्यवस्था, मनोरंजन एवं प्रथाएँ आदि परिवर्तन के नये क्षेत्र पर खड़े हैं। वर्तमान में कुछ ऐसी घटनाएँ होती हैं, जिन्होंने सदियों से सुस्थापित हमारे सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों का झकझोर दिया है। औद्योगिकरण, नगरीकरण यातायात एवं संचार के नवीन साधनों, नवीन आविष्कारों एवं मानव ज्ञान में वृद्धि आदि ने परम्परात्मक संस्कृति में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिये हैं।
प्रसिद्ध समाजशास्त्री सोरोकिन ने अपनी पुस्तक "The Crisis of our Age" में वर्तमान समय के सांस्कृतिक संकट की विशद व्याख्या की है। उनका मत है कि आधुनिक युग के सांस्कृतिक संकट का प्रारम्भ द्वितीय विश्वयुद्ध से ही हो गया था, जब पश्चिमी राष्ट्रों में अराजकता की स्थिति पैदा हो गयी थी, मित्र राष्ट्रों एवं साम्राज्यवादियों ने भी अनेक आर्थिक एवं राजनीतिक संकट थोपे। आज हमारे जीवनका हर पहलू, हर संगठन, प्रत्येक संस्था और सम्पूर्ण संस्कृति एक अभूतपूर्व संकट के दौर से गुजर रहे हैं। समाज का बाहरी ढांचा और आत्मविश्वास विश्वसनीय है, इसे सामाजिक शरीर का शायद ही कोई हिस्सा ऐसा मिले जो सूजा हुआ और घायल न हो, शायद ही कोई ऐसा स्नायु मिले जो सही ढंग से अपना कार्य ही हो, वास्तव में हम दो संस्कृतियों के बीच में फँसे हुए हैं—एक नयी हुई इन्द्रियपरक संस्कृति जो कल्तूक की सुन्दरतम उपलब्धि थी और दूसरी ओर आते वाली की कल की भावनात्मक संस्कृति जिसे हम ग्रहण कर नहीं पा रहे हैं। इस गड़बड़ी में सही दिशा पाना और अपने को बचाकर सही दिशा में ले जाना असम्भव प्रतीत हो रहा है। इस संक्रमणकालीन समय में दिल कंप देने वाली झरवनी छायाएं उम्र रही है और निरन्तर बढ़ रहे संतुष्ट की चीर पाना कठिन हो गया है। आज व्यक्ति भावात्मक संस्कृति की अपेक्षा इन्द्रियपरक संस्कृति को अधिक महत्व देता है। सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का बोध वह इन्द्रिय सुखों के आधार पर करता है। देश के सांस्कृतिक परिदृश्य में अपने रस्ते वैविध्य के साथ क्षेत्रीय संस्कृतियों अपने वैश्विक के कारण अलग दिखाई पड़ती है। फिर भी ये संस्कृतियाँ अपनी—अपनी शास्त्रीय परम्पराओं का हवाला देती रहती है। हिन्दू वेदों और शास्त्रों मुसलमानों कुरान तथा हदीस और इसाई ओल्ड एप्स न्यू टेस्टामेंट का यह नमूना अपने आप में एक सामाजिक संरचना है। इसकी व्याख्या जीवन बदलते सन्दर्भों के साथ
बदलती रहती है और समय–समय पर यह अनेक प्रकार के सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलनों को भी प्रेरणा देती है।

युगों से प्रचलित भाषाओं, साहित्य, कथा शिल्प, दर्शन विज्ञान और संगीत के विकास में हमें संशोधन का कुछ अंश मिलता है। बौद्ध धर्म ने पाली और मागधी जैसी प्राकृतिक भाषाएँ विकसित की। गुप्तकाल में सांस्कृत साहित्य में उलेखनीय रचना का कार्य हुआ। इसी युग में विश्व विद्वत्ता नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलाम् जैसी महान साहित्यिक कृतियों की रचना हुई। मध्यकाल में भी प्रादेशिक भाषाओं साहित्य शिल्प चित्रकला और संगीत का प्राचीन परम्पराओं के साथ फास्ट और मध्य एशिया की परम्पराओं का मेल हुआ, जिससे एक नई शैली को जन्म मिला। इसी प्रकार संगीत में सितार जैसे कुछ वाद्यों का जन्म हुआ और साथ ही संगीत की कुछ नई विधाएँ भी सामने आयी, किन्तु ये सभी विकास आति प्रसूति सम्पन्न सामाजिक संरचना वाले मध्ययुगीन समाज के ढौंचे में हुए। एक और जहाँ सामाजिक संरचना थी, वहीं उसके साथ ही कुछ क्षेत्रों में आदि कबिलाई जनजातीय और दास प्रथम सामाजिक संरचना के पूर्व रूप में भी विद्यमान हैं।

भारतीय समाज की अहिंसात्मकता का अर्थ केवल उसकी गूढ़ प्रकृति से ही नहीं है, इसका सही अर्थ समझने के लिए इसकी ऐतिहासिकता और सन्दर्भता का गहरा अध्ययन करने की आवश्यकता है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रवृत्तियों आत्मसात और सात्त्विक रूप की प्रक्रियाओं द्वारा दिखायी देती है। आर्य और द्रविड एक साथ रहे। हिन्दू और मुसलमान सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक–दूसरे के समीप रहे हैं। इसके भी इन दोनों में सम्पर्क में रहे। आज हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जैन, ईसाई और अन्य धर्मों के लोग सरकार, शासन तन्त्र और सार्वजनिक जीवन के अन्य
क्षेत्रों में एक साथ सहभागी है। भारत में अत्यधिक विभिन्नता में भी निरंतर एकता पायी जाती रही है। यह विभिन्नता हजारों जाति समूहों में प्रतिविभित होती है, प्रत्येक जाति के अलग-अलग धार्मिक कृत्य, संस्कार, नियम और रीति-रिवाज है, विभिन्नता हजारों जाति समूहों में प्रतिविभित होती है।

मुगल बादशाह अकबर ने दीन-ए-इलाही के नाम से राजकीय धर्म की अवधारणा भी क्रियाप्रिय किया, जो हिन्दू-धर्म और इस्लाम का संग्रहण था। गैंगों में अधिकतर मुसलमान इतने परिवर्तित हो गये थे कि उनकी अलग से पहचान करना कठिन हो गया था। विवाह संबंध, सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में एक साथ घुल-मिल गये थे। उपनिवेशीय भारत के दो इतिहास-उपनिवेश के द्वारा निर्मित उपनिवेशवाद और दूसरा भारत की संस्कृति और सभ्यता का था, जो इसके बीमारी और दार्शनिक जोश पर आधारित था। भारत का इतिहास जिसमें इसकी वास्तुशिल्प निधि, साहित्य और वर्णन संगीत, नाट्य विधा, नृत्य और ललित कला आदि का समावेश है, जिसका भारत में सामाजिक जीवन में निरंतर योगदान है।

महार्षि रवीन्द्रनाथ टैगोर भारत की परम्परा और संस्कृति विश्वस्त को ध्यान में रखते हुए आमूल परिवर्तन लाना चाहते थे। आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू आधुनिक और धर्म-निरंपेश विचारधारा के व्यक्ति होते हुए भी भारत की परम्परा का सम्मान करते थे। नेहरू के अनुसार, "विगत सदैव हमारे साथ है और जो भी हम हैं और हमारे पास है, वह सब हमारे भूतकाल की देव है। हम इसकी देव हैं और इसमें खूब हुए रहते हैं। विगत को वर्तमान से जोड़ना और भविष्य तक ले जाना जहाँ यह हिंदू समस्म पहला है, वहाँ उसे छोड़ देना और इस सबको विचार और कार्य के लिए स्पन्दित और प्रदूषित करने का नाम ही जीवन है।"
उपरोक्त बात के महत्व से इनकार नहीं कर सकते कि विविधता में एकता वाली भारतीय संस्कृति के अनेक लाभ हैं, किन्तु समाज व्यवस्था के नकारात्मक परिणामों की उपेक्षा करना भी गलत होगा। भारतीय समाज पर दीर्घकाल तक छाये रहे सामंतवाद ने जनता के का विशाल बहुमत को अशिक्षित और गरीब बनाये रखा और जिससे उन्हें अमानवीय जीवन जीना पड़ा। उसे हर प्रकार के अन्तर्विवास और भाग्यवाद का सहारा लेना पड़ा और उसकी अपनी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति सुधारने की लक्ष भर गयी, यहाँ तक कि ब्रिटिश शासन के दौरान परिवहन संचार उद्योग आयुर्विज्ञान आदि विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विज्ञान का प्रयोग होने के बावजूद भारतीय संस्कृति के इस पक्ष में अधिक परिवर्तन नहीं लाया जा सका।

भारत के विभिन्न अंचलों में विविधता होते हुए भी कुछ मान्यताओं, नैतिक मूल्यों तथा भावनात्मक प्रतीकों की एकता है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक देश एक सूत्र में बंधा है, किन्तु आज भाषा तक धर्म और प्राचीनता के आधार पर विघटन हो रहे हैं। जिन हस्तिनों के लिए संविधान तथा देश में इतने सारे आर्थिक तथा प्राचीनता किये गए हैं। आज वे धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित हो रहे हैं। एक ओर यह हिन्दू धर्म की दुर्लभता का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर इसमें नैतिक मूल्यों का साहस होता जा रहा है।

भारतीय समाज में जहाँ एक ओर सामाजिक सांस्कृतिक परम्परा काल और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे हैं, वहीं आज भी कुछ ऐसी परम्पराएँ भारतीयों के जीवन में रच बस गई हैं, जो उनके जीवन में जीवन शैली तथा आदर्शों को निर्धारित व प्रभावित करती रहती है। साथ ही वे परम्पराएँ समाज में निरंतरता बनाये रखने के सुदृढ़ आधार है।
3.5 भारतीय संविधान में सम्मिलित राष्ट्रीय लक्ष्य —

सामाजिक दर्शन के मार्गदर्शक के रूप को निर्धारित करने के लिए प्रत्येक देश का अपना संविधान होना अति आवश्यक एवं अनिवार्य होता है। संविधान ही जन के अधिकारों और हितों की स्थापना करने तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में उसके कल्याण के लिए कार्य करने में सरकार को मार्गदर्शन एवं दिशा प्रदान करता है। संविधान से ही यह पता चलता है कि सरकार का नागरिकों के प्रति क्या दयालुत्व तथा क्या कर्तव्य है। संविधान एक आवश्यकता है, संविधान के बिना किसी राज्य का होना सम्भव नहीं है। संविधान के अभाव में उस राज्य में एक संगठित राजनैतिक तन्त्र के स्थान पर अस्त व्यस्तता और अराजकता व्याप्त रहेगी।

संविधान कानूनों का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो सरकार की मूल संरचना और इसके कार्यों को निर्धारित करता है, जिसके अनुसार देश पर शासन चलता है। प्रत्येक सरकार को संविधान में लिखे कानूनों के अनुसार कार्य करने होते हैं। संविधान देश के अन्य सभी कानूनों से श्रेष्ठ है। यह सर्वोच्च कानून है, जो सरकार के अंगों तथा नागरिकों के आधारभूत अधिकारों को परिभाषित एवं सीमांकित करता है।

भारत का संविधान भारतीय लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा लम्बी बहस और विचार-विमर्श के उपरांत बनाया गया। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को हुई थी। इसके सदस्यों में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों, जनमत के विभिन्न विचारों और समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त महान स्वतंत्रता सेनानी न्यायविद् और विद्वान सम्मिलित थे। संविधान सभा ने डॉ. बी.आर. अब्दूर्रहमान की अध्यक्षता में एक प्रारूप समिति का गठन किया। इसने संविधान का प्रारूप तैयार करने में लगभग 3 वर्ष का
समय लिया। नया संविधान, संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर, 1949 को अपनाया गया और 26 जनवरी, 1950 को पूर्ण रूप से लागू किया गया।

अन्य देशों के संविधानों की तरह भारत में भी एक प्रस्तावना दी गई है। जो कि देश के सामाजिक दर्शन को प्रस्तुत करती है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना यथारूप में निम्नलिखित है—"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी धर्म—निरपेक्ष लोक तन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गारंटी तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुत्व बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस विधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949ई.स. में (भिन्न मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी संवत् 20 हजार छः विक्रमी)" को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्म समर्पित करते हैं।

संविधान में भारत को संसदीय प्रणाली वाला एक प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित किया गया है। लोकतंत्र में जनता, सरकार का चुनाव भी करती है। जनता इस महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकती। यदि उसे स्वतंत्रता का अधिकार न दिया गया हो। इसलिए संविधान भारत के हर नागरिक को कुछ आधारभूत अधिकारों की गारंटी देता है। ये अधिकार न सिर्फ लोकतन्त्रमलक सरकार को चलाने के लिए जरूरी है वरन् हर नागरिक के व्यविधत्व के विकास के लिए भी जरूरी है। इसके अलावा लोगों की स्थिति में सुधार लाने के लिए संविधान में सरकार को कुछ निर्देश दिये गये हैं। हमारे संविधान की प्रस्तावना में सन्निहित चार सांकेतिक शब्द दिये गये है—न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व। संविधान सभी भारतीय नागरिकों को उन्हें प्राप्त कराने के लिए संकल्पबद्ध है। प्रथम व्यस्त
मताधिकार अर्थात् वयस्क को मतदान का अधिकार होगा। दूसरा लोगों को 
अपने स्वतन्त्र विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार होगा। तीसरा वर्ग विशेष 
को विशेष सुविधा की अनुमति न होगी। अर्थात् सम्पदा के लिए सामाजिक 
वर्ग जाति मत वर्ग, भाषा अथवा धर्म के आधार पर व्यक्ति, व्यक्ति के बीच 
कोई भेद-भाव नहीं बरता जायेगा। चौथा कानून की दृष्टि से सभी समाज 
माने जायेंगे। पांचवा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का आश्वासन रहेगा। जो व्यक्तित्व 
को निकालने और उसका सर्वाधिक विकास करने के लिए आदेशक है। 
छठवा लोगों में देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहित किया 
जायेगा। जिससे वे नागरिक का दायित्व निभाने में देश को पहले स्थान पर 
समुदाय को दूसरे स्थान पर तथा स्वयं को तीसरे स्थान पर रखें।

दिसम्बर, 1954 में लोक सभा ने भारत की आर्थिक एवं सामाजिक 
नीतियों के ध्येय के रूप में समाजवाद को अपनाने का प्रस्ताव पास किया। 
लोक सभा द्वारा दिये गये निर्देश के अनुसार 1956 की वित्तीय पंचवर्षीय 
योजना में राष्ट्रीय उद्देश्य के रूप में समाज का समाजवादी धार्मिक 
किया गया। इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संबंधित में संशोधन पर विचार हेतु 26 
फरवरी, 1976 को सदर स्वर्ण सिंह को अध्यक्षता में एक समिति गठित की 
गयी। इस समिति की सिफारिशों को सितम्बर, 1976 में 42वें संशोधन 
विधेयक के रूप में लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। जो बाद में 42वें 
संशोधन अधिनियम बन गया। इस अधिनियम के अनुसार धर्म निरपेक्षता की 
संकल्पना जउँ गयी और लोकतन्त्र समाजवाद तथा धर्म-निरपेक्षता के पक्ष में 
आत्मार्पित कर भारत एक कल्याणकारी राज्य बन गया।
स्वतंत्र भारत के पोषित मूल्य —

प्रत्येक भारतीय में समाजवादी धर्म निरपेक्ष और लोकतान्त्रिक गणराज्य के नागरिकों के लिए कुछ मूल्यों का स्थापित करना आवश्यक है, जिससे वे अपने निर्धारित आदर्शों के अनुसार उत्कृष्ट जीवन जी सकें।

सामाजिक मूल्य मानव समाज के जीवन को संचालित करने वाले सांस्कृतिक मानदंड होते हैं। ये समाज के सदस्यों के लिए साझे होते हैं। इनका प्रतिबिम्ब समाज के सदस्यों द्वारा आमतौर पर अस्वीकृत विचारों, विश्वासों और सिद्धांतों में होता है। समाज में क्या शुभ और वांछित है, वे ही मूल्य इसे परिभाषित करते हैं। वे ही सामाजिक व्यवस्थाओं और सामाजिक व्यवहारों को वैधता प्रदान करते हैं। व्यक्ति सामाजिक मूल्यों को सामाजिक संस्थाओं में सीखते या ग्रहण करते हैं। परम्परागत समाजों में गुरु-रूप से परिवार की संस्था ही सामाजिक मूल्यों की शिक्षा देती थी, लेकिन आधुनिक काल में बढ़ती सामाजिक जटिलता के कारण शिक्षण संस्थाएं अहम संस्था बनकर उभरी है। तीव्र आर्थिक, विकास और सामाजिक सुप्राचरण के कारण भारतीय समाज में बदलाव आरम्भ होने से पहले सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की शिक्षा अपने परिवार, समुदाय व समाज से मिलती थी। नगर जनसंचार के क्षेत्र में क्रांति आने से शिक्षा के स्रोत के रूप में कई माध्यम अस्तित्व में आये हैं।

मूल्यों के विकास को ‘व्यक्तित्व’ और ‘आजीवन’ चलाने वाली प्रक्रिया माना जाता है, जिसके कारण मूल्यों का शिक्षण—शिक्षा का एक अभिन्न अंग बन जाता है। अतः: शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण मानवीय विकास को दिशा—निर्देश देने एवं नाराज दर्शन करने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूल्यों पर निर्भर है। इन मूल्यों की प्राप्ति के अतिरिक्त शिक्षा का एक और दावत भी
है, यह उन मूल्यों को दूर करने में साधन के रूप में कार्य करें, जो समय के साथ अनुपयोगी हो चुके हैं। मूल्यों के समस्या में शिक्षा की दोहरी भूमिका है। मूल्यों की प्राप्ति की तथा साथ ही उन मूल्यों को दूर करने की कोशिश की जानी चाहिए। जो तत्कालीन परिस्थितियों में समीचीन नहीं है। मूल्यों को मनुष्य की वरीयताएँ समझ जाता है। एक ओर उन पर इच्छा की छाप हो सकती है और दूसरी ओर वे न्याय और सत्य के प्रति प्रतिबद्धता पर आधारित हो सकते हैं। प्रत्येक मानव के लिए कुछ ध्येय और मूल्य चाहिए। जिनसे वे अपनी दैनिक दिनचर्या में मार्गदर्शन के लिए आचार संहिता बना सके। इसी प्रकार अपने सामाजिक समूहों को भी अपने सामाजिक जीवन के मार्गदर्शन के लिए तथा अपने जीवन का असाधित और विसंगति की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए ध्येयों तथा मूल्यों की आवश्यकता होती है।

मूल्यों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत भी किया जा सकता है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति अथवा समुदाय के भौतिक, सामाजिक, मानवात्मक, आर्थिक सौन्दर्यपरक नैतिक और आध्यात्मिक जीवन से है, आर्थिक मूल्य व्यक्ति एवं समूहों में भोजन, कपड़ा और आश्रय प्रदान कर उसके भौतिक अस्तित्व को बढ़ाते हैं, सामाजिक मूल्य व्यक्ति और समूहों के बीच संतोषजनक आपसी सम्बन्धों से जन्म लेते हैं। सत्य मूल्यों का निर्माण बौद्धिक खोज के क्षेत्र में होता है। सौन्दर्यपरक मूल्य, सत्य, सौन्दर्य और अच्छाई के क्षेत्र में पैदा होते हैं। नैतिक मूल्यों का सम्बन्ध ठीक चुनाव अथवा निर्णय करने की कसौटी से होता है और आध्यात्मिक मूल्य चार्ट जीवन पद्धति को प्रतिबिंदुत करते हैं। इन मूल्यों के अनुरूप विभिन्न प्रकार की कुर्सियाँ हैं, जो भौतिक भलाई के मार्ग में बाधा डालती है। कुर्सियाँ अच्छे मानवीय सम्बन्धों के अनुरूप में कला का रूप ले लेती है। अपने आस-पास की वस्तुओं का भली-भौतिक ज्ञान न होने के कारण बौद्धिक कुर्सियाँ से वेल्डेमा और अविश्वास पैदा होता है,
किन्तु शिक्षा के माध्यम से इन पर अंकुश रखा जा सकता है।

3.8 महर्षि रवीन्द्रनाथ के अनुसार स्वतंत्र भारत का लक्ष्य —

रवीन्द्रनाथ टैगोर एक महान मानवतावादी दृष्टिकोण रखते थे। उन्होंने राष्ट्रवाद की संकीर्ण भावना से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानवता को अविभाज्य इकाई माना। उनके अनुसार किसी राष्ट्र के किसी व्यक्ति की समस्या व्यक्तिगत नहीं है न ही राष्ट्रीय है, वरन् यह विश्व समुदाय की समस्या है। टैगोर का मानना है कि ज्ञान, संस्कृति तथा सम्पत्ति के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है, उनका कहना था कि मानवता को किसी सीमा रेखा में नहीं बोधा जा सकता है। वह देश तथा समुद्र के पार बहाँ तक पहुँचता है, जहाँ मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। टैगोर ने अपने विश्ववाद को सम्पत्तियों का एकीकरण कहा है। उन्होंने के शब्दों में, “सम्पत्ति का तात्पर्य बहुत से लोगों का मिला हुआ जीवन है।” टैगोर अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास करते थे, उनके अनुसार ईश्वर की अभिव्यक्ति सम्पूर्ण जगत है, इसलिए सभी में आद्याभिमुक्तता एकता है। किसी व्यक्ति या जाति की सांस्कृतिक विभाजन केवल मात्र उसकी को निधि नहीं है। संस्कृति सार्वभौमिक होती है। ज्ञान ज्ञान सार्वभौमिक है। किसी व्यक्ति या राष्ट्र का नहीं। इनमें नैति होनी चाहिए तभी इनमें जीवनता रहेगी अन्यत्र मृत प्राय हो जाएगी। महर्षि टैगोर कहते हैं— “अपने ख़ूबँकी दरवाजे खोल दो ताकि बाहर की हवा का स्पर्श तुम्हें मिले, उस हवा में तुम्हारे गन्ध घुले। जो सम्पूर्ण विश्व को सुगम्यित कर दे।”

राष्ट्रीय समस्याओं की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि उन दिनों ओँखें लाल करके भीख मोगना और भराई हुई आवाज से गत्तर्वमेंट को टर्नामा धमकाना, इसी को पराक्रम समझा जाता था। हमारे देश में राजनैतिक
अध्यावसाय की भूमिका कितनी उपयोगितक थी, इसकी कल्पना करना आज की तरुण पीढ़ी के लिए सम्भव नहीं है। उन दिनों पॉलिटिक्स का आकर्षण ऊपरी श्रेणी के लोगों तक ही था।

हमारे देश को हमसे सम्पूर्ण रूप से कोई भी छोटी नहीं सकता और न कोई बाहर से वापस लाकर दयावश हमारे साथ में रख सकता है। जिसमात्र में हम अपना स्वामाविक अधिकार खो बैठे हैं, उसी मात्रा में अन्य लोगों ने देश पर अधिकार जताया है। समाज की सम्मिलित शक्ति से ही देश यथार्थ रूप से आत्मसम्पन्न कर सकता है। समाज ने ही विद्या का प्रबंध किया है। प्यासे को पानी और भूख्के को अन्न दिया है, धार्मिक लोगों को मन्दिर दिये हैं। अपराधियों को दण्ड समाज से ही मिला है और अंदेश लोगों को अंदेशा मिली है। वह भी समाज से। राज्य प्रधान व्यवस्था में राजनीति के अन्तर ही देश का मार्ग-स्थान एक विशेष रूप से आबद्ध हो जाता है, लेकिन समाज प्रधान व्यवस्था में देश का प्राण स्वर्ण व्याप्त होकर रहता है। राज्य प्रधान व्यवस्था में राजनीतिक-पतन से देश का अध-पतन हो जाता है और अन्तर में उसका नाश हो जाता है।

देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा है कि यदि कुछ मौग्यता है तो देशवासियों की ओर से कोई प्रतिक्रिया ही नहीं होती। जलवायु, विद्यादान — प्रत्येक वस्तु के लिए सरकार बहादुर का मुंह ताकना पड़ता है। इसी दिशा में देश की गम्भीर क्षति हुई है। देश का लोगों के साथ यथार्थ सम्बन्ध सेवा के सूत्र से होती है।

आज अपने देश में हमने चरखे का चिप्पा बनाया हुआ झंडा फहराया है। यह संकीर्ण जड़शक्ति का झंडा है, आकृतिकित यन्त्रशक्ति का झंडा है। व्यवसाय की दुर्बलता का झंडा है। इसमें चित्रशक्ति का
आवाहन कभी नहीं है। समस्त देश को मुक्ति पथ पर चलने का आमन्त्रण किसी वाद्य प्रक्रिया भी विवेकहीन पुनरावृत्ति करने का आमन्त्रण नहीं हो सकता। उसके लिए आवश्यक है पूर्ण मनुष्य का उद्देश्य।

दुनिया में ऐसा कोई स्वाधीन देश नहीं है। जहाँ दूसरे देशों से आई हुई चीजों का उपयोग न किया जाता है, लेकिन जो यथार्थ में स्वाधीन देश है, वह अपनी शक्ति को भी विविध प्रयत्नों से सार्थक करता रहता है, एकांगीरूप से नहीं, केवल वैज्ञानिक की तरह मात्र तैयार करके नहीं, बल्कि विधार्जन से बौद्धिक आलोचना से, लोकहित से, शिल्प और साहित्य के सृजन से, मनुष्यता के पूर्ण विकसित से। इन दिशाओं में हमारा देश पीछे रहा तो अपने दोनों हाथों की जो जज्ञा का अन्तर नहीं होगा और हमें स्वराज्य की नहीं मिलेगा।

निष्कर्ष — उपरोक्त अध्ययनोपरांत निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं—

(1) परम्परागत भारतीय समाज के परिदृश्य के दो प्रमुख लक्षण हैं— जाति प्रथा तथा संयुक्त परिवार प्रथा।

(2) भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत के समस्त नागरिकों को आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक प्रयास करने का विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(3) राजनीतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया।

(4) भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता सभी धर्मों का समान करना तथा उनके प्रति सहिष्णुता का भावना रखना तथा मूल्यों का सम्बन्ध व्यक्ति अथवा समुदाय के भीतिक, बौद्धिक, सामाजिक, बौद्धिक, भावात्मक,
आर्थिक नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन से है।

(5) शिक्षा की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए वैज्ञानिक सिद्धांतों, विधियों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है।

(6) समाजवाद का मूल सिद्धांत है कि उत्पादन एवं वितरण के सभी साधनों पर राज्य का स्वाभाविक हो और इस क्षेत्र निजी सम्पत्ति की अनुमति न दी जाय।